न्दी

.५०	सत
.५०	राजस्थान
.५०	सत्संग के ८ व
१.००	पांच नाम की
.७५	हितोपदेश
१.००	

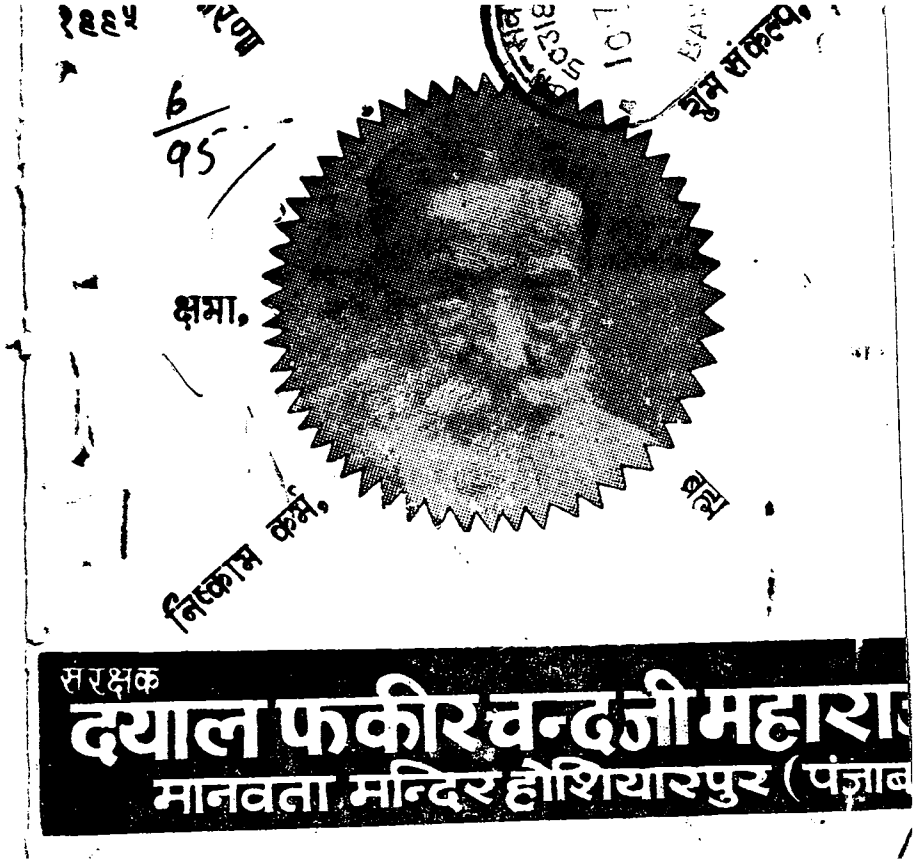

१९९५

6/95

शुभ संकल्प,

क्षमा,

निष्काम कर्म,

सरक्षक

दयाल फकीर चन्दजी महारा

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब

'मनुष्य बनो' के नियम

शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जावेंगे।

यह पत्र प्रत्येक मास की २२ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा। लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य ३०.०० है।

यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४४	जून-९५	अङ्क—९

प्रेम धारा से :

शब्द

तेरे दीवाने को तेरी, जात से ही काम है।
बाकी सब दुनिया से दाता, वह फिरा नाकाम है॥
ध्यान सुमिरन भजन की, तश्लीश से क्या वास्ता।
तेरे चरणों की जगह में, उसका तो निज धाम है॥
दुनियां वाले कहते हैं, पागल है दीवाना है यह।
अकल वालों के यहां, तो, वह हुआ बदनाम है॥
ढूंढ़ता फिरता तुम्हें वह, तुम नजर आते नहीं।
तडपता है - तरसता है, उसको कहां आराम है॥
वेद ग्रंथ - कुरान और, अंजील वह पढ़ता नहीं।
तेरी जबान के हरुफ, बस उसके लिये इल्हाम है॥
ताकता रहता है बुत बन, तेरे चेहरे का नूर।
मुस्कराहट तेरी सूरज, खामोशी ही शाम है॥
तू मौहम्मद, तू है ईसा, तू ही नानक, तू कबीर।
तू है 'गाफिल का सभी कुछ, तू ही कृष्ण और राम है॥

हो तो मुझे दे, वह पेट के दर्द की दवा है। यह साधु चिलम बढ़ाकर ले गया, वह तम्बाकू पीते तो नहीं थे परन्तु जान बूझकर दो एक दम लगाया और कहा 'तुम तो तम्बाकू पीते हो। लो पियो।' फिर वह इनके सामने पीने लगा।

रसिक मुरार जी को राजाओं ने कई गाँव की जागीर दे रक्खी थी। किसी राजा ने अपनी जागीर लौटा लेने की इन्हें सूचना दी। इनके गुरू महाराज का पत्र भी उसी समय पहुँचा जिसमें उन्होंने इनको बुलाया था। यह भोजन कर रहे थे। बिना हाथ मुँह धोये उठे और गुरु की सेवा में पहुंचे। गुरु ने देखकर पूछा 'तुम हाथ मुँह धोकर आते ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी ?' यह बोले 'गुरू की आज्ञा पालन करने में देर करना महा अधर्म है।' श्यामानन्द जी यह बात सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुये और छाती से लगा कर सर पर हाथ फेरा। बातचीत में इन्होंने जागीर के निकल जाने का हाल भी कह सुनाया। इन्होंने हाथ मुँह धुलवाकर कहा 'अभी उस राजा के पास जाओ। यह प्रणाम करके उठ खड़े हुये और पालकी पर चढ़कर राजा से मिलने के लिये चले। दरबारियों ने इनसे कहा 'आप स्वयं न मिलिये। यह महादुष्ट और असभ्य है। हम उससे मिलकर जो बात होगी आपसे निवेदन करेंगे।' राजा ने इनका आगमन सुनकर इन्हें बुला भेजा परन्तु हाथीवान को समझा दिया कि 'मस्त हाथी ले जा कर उस साधु को डराओ जिससे वह भाग जाये।' उसने पालकी के सामने हाथी खड़ा कर दिया। रसिक मुरार जी उस मतवाले हाथी को देखकर बोले 'तू गणेश का रूप है। भक्ति की

ओर ध्यान दे श्री कृष्ण जी का नाम ले और कुटिलता छोड़ दे।' हाथी सचमुच अपनी दुष्टता भूल गया और खड़ा हुआ प्रेम के आँसू बहाने लगा। रसिक जी ने पालकी से झुककर उसके कान में गुरु मन्त्र फूंक दिया और उसका नाम गोपाल रखकर अपने गले की माला उसे पहिना दी। पालकी और हाथी दोनों देर तक उसी जगह खड़े रहे। राजा यह सब सुनकर बहुत ही लज्जित हुआ और उसने वहां आकर अपनी आंखों से यह दशा देखी, हाथबांध पांव पर गिरा, क्षमा चाही, और इनका चेला हो गया। निकाली हुई जागीर के अतिरिक्त और भी कई गांव दिये। उस समय से हाथी की यह दशा हो गई कि जब किसी साधु को देखता चुपचाप होकर उसे प्रणाम करता और बिना प्रसाद लिये हुये नहीं हटता था। अब राजा ने भी अपना ढग बदल दिया। वह बराबर भण्डारा करवाने लगा। साधुओं की भीड़ भाड़ होने लगी। वह उनके आदर और सन्मान का ध्यान रखने लगा। जिन्हें पहिले उससे हानि पहुंच चुकी थी उन सबको अपने व्यवहार से प्रसन्न कर लिया और भक्ति भाव के प्रचार में सहायक बन गया। कुछ दिनों पीछे हाथी की यह दशा हो गई कि वह साधुओं की खोज में निकल भागता। एक बार वह किसी दूसरे राज्य में जा पहुँचा। उसने पकड़वाना चाहा परन्तु हाथी हाथ नहीं आया। लोगों ने कहा 'यह हाथी साधु हो गया है बिना किसी साधु की सहायता के न पकड़ा जायेगा।' राजा ने परीक्षा के लिये अपने हाथीवान को साधु का भेष लाकर उसके पास भेजा। उसने उसे देखते ही सर नीचा लिया। हाथीवान ने उसके पांव में बेड़ियां डाल दीं

दूर जाने पर सोचने लगे 'बनिया मोटा और धनवान है, यह भक्त नहीं प्रतीत होता है। तिलक और माला भी नहीं रखता। इससे धन छीन लेना चाहिये। यह धन द्रव्य इसके किस काम का है। यह सब साधु सेवा में लगना ही अति उत्तम है।' फिर कमर से तलवार खींचकर बोले 'जो कुछ पास है रख दे नहीं तो अभी दो टुकड़े कर दूंगा।' बनिया डर के मारे काँपने लगा और बोला 'लो, सब कुछ ले लो, तंग मत करो ' इन्होंने गहने रुपये सबके सब ले लिये। उसकी स्त्री के हाथ एक छल्ला रह गया। उसे भी यह हाथापाई करके लेना चाहते थे। स्त्री बोली 'निर्दयी! तुझमें नाम मात्र भी दया नहीं है। एक छल्ला भी पास नहीं रहने देता।' उन्होंने कहा चल बावली! दूर हो। तेरा पति कंगाल नहीं है। यह सौ छल्ले बनवा देगा। उसी धन को धन समझना चाहिये जो भक्तों के काम में आये नहीं तो वह मिट्टी के तुल्य है।'

इतना मुंह से निकलना था कि वह दोनों साहूकार और साहूकारनी श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के रूप में प्रगट हुये। इनको गले से लगाया और राज भक्त की पदवी देकर बोले 'धन्य है तुम्हारी साधु सेवा! जाओ इस भाव को और भी दृढ़ करते चलो। मैं मन के भाव का भूखा हूं। कर्म धर्म को नहीं देखता। केवल सच्चाई और भाव की ओर मेरी दृष्टि रहती है अब तुम्हें कोई चिन्ता न व्यापेगी। साधु सेवा के प्रताप से तुम को सहज ने दर्शन मिल गया।' यह घर लौट आये। साधुओं को अपनी सेवा से प्रसन्न किया उस दिन से कृष्ण भगवान के प्रेम में मग्न रहने लगे और अन्त में कृष्ण लोक को सिधारे।

जो मेरा मैं भी हूं उसका, मानूं प्रेम का नाता।
जिनमें मेरा प्रेम नहीं है, उनके ढिग नहीं जाता ॥१॥
छल चतुराई काम न आवे, निष्फल बुद्धि बिलासा।
प्रेम भाव जब घट में आवे, अन्तर होय उजासा ॥२॥
मेरा रूप नहीं है कोई, मेरे रूप हैं सारे।
जो जिस रूप से मुझको माने, रहे उसी के सहारे ॥३॥
दर्शन दूंगा उसी रूप में, उसी से पार लगाऊं।
काल कर्म का दुख नहिं व्यापे, सहजहि फन्द कटाऊं ॥४॥
राधास्वामि ने मुझे चिताया, करूं साध की सेवा।
साध रूप का दर्शन निस दिन, साध हैं सच्चे देवा ॥५॥

शब्द

मन तू सोच समझ पग धार ॥

बिन समझे कोई पार न पावे, भटके बारम्बार।
संशय दुविधा और चतुराई, यह अज्ञान विकार ॥
कोई नर पशु है कोई त्रिया पशु, गुरु कोई गंवार।
वेद पशु है सब संसारा, समज विवेक विचार ॥
माया पशु माया का बन्धुआ, मुक्ति पशु स्वीकार।
भक्ति पशु बन्धन नहिं काटे, बूड़ा काली धार ॥
ज्ञान पशु को क्या करूं, निन्दा वह ग्रन्थन के लार।
जड़ चेतन की गांठ न खोले, उरझ उरझ रहा हार ॥
योग पशु बधे भोग की रसरी, बैठे आसन मार।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सेवक हुआ भव पार ॥

वनदेवी— (गताँक से आगे)

उसने बनदेवी को गोद में उठा लिया और प्रेम के आंसू बहाने लगी। फिर भील उसको झोपड़ी में लाया और घावों की मरहम पटटी की गई।

थोड़े समय में ही घाव भर गये और वनदेवी आराम से रहने लगी। पर भील उसको देखकर दुःखी होता था। एक दिन उसने कहा बहिन यदि तू राजी हो तो हम तीनों बहनोई की तलाश में घर से बाहर निकलें। यहाँ बैठे-२ कैसे पता चलेगा। यदि वह मिल जांय तो हम सब मिल कर जंगल में बड़े आनन्द से रहेंगे। बनदेवी की मन चाही हुई और तीनों खोज को चल दिये।

तीनों सलाह करके सूरजसिंह की तलाश में दिल्ली की ओर चल दिये। पर राह में एक और दुर्घटना घटी जहां यह लोग ठहर रहे थे पास ही किसी सौदागर का डेरा लगा हुआ था। उसे मालूम हुआ कि भीलों के साथ एक बड़ी सुन्दर और रूपवती स्त्री आई हुई है वह उसको देखने के लिये भीलों के पास आया और उनको लोभ लालच देकर वनदेवी को हवाले करने को कहा। सदाचारी बली भील कब सुनने वाला था। अन्त में लड़ाई की नौबत आ गयी। सौदागर ने भील और बनदेवी को गिरफ्तार करना चाहा। भील में इतनी शक्ति कहां थी कि वह सारे लशकर पर विजय पाता, उसने भागकर निकट ही राजा के दरवार में फरियाद की कि मेरी बहिन को एक सौदागर जबरदस्ती पकड़ कर लिये जा रहा है। संयोगवश यह दरबार सूरजसिंह का था। उसने फौरन कर्मचारी भेज दिये। सौदागर बन्दी बना हुआ पेश हुआ, सन्ध्या का समय था। सूरजसिंह ने वनदेवी को देखा वह

अत्यन्त निर्बल हो रही थी मगर रूप रंग को हानि नहीं पहुंची थी। फिर भी राजा पहिचान न सका। वनदेवी को जरूर कुछ संशय हुआ। पर वह चुप रही। राजा ने अपने दरबार की किसी कोठरी में बनदेवी और भीलनी को ठहरने की जगह दी। सौदागर हिरासत में ले लिया गया। और राजा ने हुक्म दिया कि कल तुम्हारे मुकदमे की सुनवाई होगी।

जिस समय यह आयुश हुआ उसी समय दो नवयुवक राजा के पास लड़ते झगड़ते हुये आ पहुँचे। दोनों बड़े सुन्दर और बली थे। इनमें से जो बड़ा था कहने लगा मैंने जङ्गल में एक हिरन को मारा। इसका तीर बाद में लगा। पर यह कहता है कि शिकार मेरा है। छोटे ने कहा धर्मावतार! हमारा न्याय आपके हाथ है। निःसन्देह तीर तो इसी ने पहले चलाया पर हिरन घायल मेरे ही तीर से होकर गिर पड़ा, आप न्याय करें। इन युवकों के स्वभाव में क्षत्रीपन था। राजा ने पूछा तुम कौन हो? एक ने कहा मैं मल्लाह का लड़का हूँ। दूसरा कहने लगा मैं लकड़हारे का बेटा हूँ। राजा ने कहा तुम दोनों भी यहीं आराम करो। आज सन्ध्या समय हो गया है कल तुम्हारा भी न्याय किया जायगा। वह दोनों एक साथ वहां ठहर गये।

राजा को मन में अति आश्चर्य! यह विचारने लगा न यह स्त्री भीलनी प्रतीत होती है न यह दोनों युवक मल्लाह और लकड़हारे हैं। इनका रूप-रंग-ढंग वार्तालाप उच्च कुल का सा मालूम होता है। हो न हो इसमें कोई रहस्य अवश्य है। चलो भेष बदलकर हम भी इनके पास ही

रहने का आयुश दिया।

इस घटना के दो वर्ष बाद उसने चढ़ाई करके धारा नगर को भी जीत लिया और उसकी शेष आयु सुख चैन में व्यतीत हुई।

जिस तरह आपस में इनको मिलाया।
बिछुड़े सब मिलें मेरे रघुराया॥

धन्य हैं वह प्राणी जो भगवान पर भरोसा रखते हुए धर्म के पथ को नहीं त्यागते। क्योंकि वह ईश्वर के सच्चे पुत्र कहलायेंगे और सांसारिक परीक्षा और कष्टों के उपरांत इनको प्रभु के चरणकमल की छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का सुअवसर प्रदान होगा।

कबीर चिंता क्या करे चिंता से क्या होय।
मेरी चिंता हरि करे चिंता मोहि न कोय॥
अंडा पाले काछुआ बिन थन राखै पोख।
यों करता सबकी करे पाले तीनों लोक॥

—: o :—

उभय कुमारी

उभयकुमारि मालवा देश की चन्देरी नगरी के राजा प्रतापसिंह की सुन्दर और धर्मात्मा पुत्रवधु थी। यह चित्त की उदार और दयालु थी। इसका विवाह सूरसैन नामी सोनगपुर के राजकुमार के साथ हुआ था। यह भी बड़ा सभ्य और सुशील स्वभाव का युवक था। जब से उभय कुमारि इसके यहाँ ब्याह कर आई थी। वह नित्य प्रति

बिना चूक के सूरसैन की सेवा को अपना धर्म समझती थी। कहने को तो यह दोनों पति पत्नी थे। पर दोनों ही बड़े धर्मात्मा थे। उभयकुमारि पति से दो चार दिन के लिये भी अलग नहीं रहना चाहती थी।

कहते है सूरसैन किसी वजह से श्रीवस्ती नगरी के राजा के आधीन था। साल में कभी-कभी इसके दरबार में जाना पड़ता था। राजा ने इसकी पुरानी सेवाओं के फल-स्वरूप कुछ गाँव भी दे रखे थे। जिनका यह राजपूत सरदार बना हुआ था। सूरसैन यों तो हर तरह से नेक था पर स्वामिभक्ति का गुण इसमें कूट-कूट कर भरा था। श्रीवस्ती नगरी का राजा इसके बल पराक्रम और पुरुषार्थ से अति प्रसन्न रहता था और चाहता था कि वह बहुधा दरबार में आता रहे जिससे उसको उसकी सलाह मशवरा लेने का लाभ मिलता रहे। पर सूरसैन को फिर भी अपने इलाके के बन्दोवस्त को आना ही पड़ता था।

जब इसकी शादी हो गई इसने समझा अच्छा हुआ। उभयकुमारी रियासत के बन्दोवस्त में सहायक रहेगी। दोनों शादी होने से खुश थे और दोनों ही एक दूसरे को चाहते थे। और तन मन से एक दूसरे पर निछावर थे।

संयोगवश एक बार ऐसा अवसर हुआ कि श्रावस्ती नगरी के राजा ने सूरसैन को बुलाकर किसी पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। जहाँ इसकी सेवा की २-४ महिनों को बड़ी जरूरत थी। सूरसैन घर पर अपनी नेक स्त्री से विदा होने को आया। यहां उसने अपनी सैना को संभाला और उभयकुमारि को राजा का आदेश सुनाया। उभय कुमारि बोली आप राजपूत हैं जहां काम पड़े वहां जांय।

चाहे मुझे आपकी जुदाई से दुख हो पर क्षत्री धर्म के सामने इसका लिहाज नही किया जा सकता। आप शोक से चले जाइये और संग्राम में राजा का हाथ बटाइये। मैं कुछ दिन के लिये अकेली ही रह जाऊँगी। मगर मेरे प्राण आपके साथ रहेंगे। सूरसैन ने कहा प्रिये ! मैं विवश हूँ मेरा मन भी तेरे पास होगा। पर राजा की आज्ञा का पालन करना जरूरी है हम उसकी प्रजा हैं, उसका नमक खाते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी से हमारा खानदान उसके आधीन है। मैं तुझको भी साथ ले चलता पर संग्रामभूमि में स्त्री का साथ रखना वर्जित है। और फिर अपने इलाके का इंतजाम भी करना जरूरी है। मुझको दो मास से अधिक समय नहीं लगेगा। मैं संग्राम को जीत करके शीघ्र ही तेरे पास आ जाऊंगा। उभयकुमारि बोली प्राणेश्वर ! जो कुछ आप कहते हो सत्य है, जिस प्रकार तुमको अपने स्वामी का आयुश सिरोधार्य है मैं भी पतिपरायण हूँ। कभी तुम्हारी मर्जी के खिलाफ काम नहीं करना चाहती। पर एक वर आपसे मांगती हूँ। वह यह कि तीजों के दिन आप यहां अवश्य आ जावें जो मैं आपकी पूजा कर सकूं। आज से चार महीने बाद तीजों का दिन आवेगा। उस समय तक आपकी बाट देख सकती हूँ। यदि आप तीजों तक न आये तो फिर ईश्वर जानें मेरा क्या हाल होगा ? सूरसैन ने हंसकर उत्तर दिया तू तीज को कहती है मैं जल्दी ही संग्राम को जीतकर आ जाऊंगा। और तीज को तो जरूर ही यहां हूँगा। तू खातिर जमा रख मैं हजार नुकसान करके भी यहाँ आ जाऊँगा। इसमें लेशमात्र भी शंका न होगी। तू उस दिन जरूर मेरे इन्तजार में रहना।

इस प्रकार ढाढस देकर सूरसैन तो अपनी सैना को साथ लेकर संग्राम में चला गया। उभयकुमारि ने अपने वस्त्र आभूषण उतार कर रख दिये। साधारण एक धोती पहन ली और उस दिन से अपने पति के स्थान पर रियासत का कामकाज खुद करने लग गई। रात दिन उसको अपने प्राणपति का ध्यान रहता था। जिस प्रकार योगी परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं। यह ही उसकी दशा थी, दो मास बीते सूरसैन नहीं आया। पर सती के चित में स्थिरता थी। यह जानती थी तीजों के दिन जरूर आजायेंगे। हिन्दू स्त्रियों में तीजों का दिन बडा पुनीत त्यौहार माना जाता है। हम इसकी असलीयत तो नहीं जानते पर इस दिन सुहागिन स्त्रियां व्रत रखती हैं और अपने पति की सलामती के लिये प्रार्थना करती हैं। वह पति पूजा का दिन समझा जाता है। उभयकुमारि को पूण विश्वास था कि उसका पति उस दिन जरूर आ जायगा क्योंकि वह प्रतिज्ञा करके गया था।

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे मेरु गम्भीर। टरे न टारें वचन को,
टरते नहीं योधा धीर रणधीर।

इस समय सूरसैन बराबर शत्रुओं से लड़ता रहा। उसको अवकाश तक न मिला कि घर का खबर तक तो भेज दे। न उभयकुमारि ने ही कोई आदमी उसकी खबर लेने को भेजा उसमें संग्राम तो जोत लिया। शत्रुओं को मारकाट कर श्रावण के महीने में श्रावस्ती नगरी पहुँचा तीज के त्यौहार के केवल एक या दो दिन ही बाकी रह गये थे। श्रावस्ती के राजा ने भारी मान आदर किया। और इच्छुक हुआ कि वह दो चार दिन वहां ठहरे पर उसने

हाथ जोडकर प्रार्थना की श्री महाराज ! मेरी स्त्री भरोसे होगी यदि मैं तीजों के दिन घर न पहुँचा तो फिर खैर नहीं है ! राजा ने फिर टोकना ठीक न समझा। थका भांदा सूरसैन एक तेज साँडनी पर सवार हुआ। पानी रिमझिम रिमझिम बरस रहा था। बिजली कोंध रही थी पर वह अकेला ही सांडनी पर सवार होकर चल दिया।

अब जरा उभयकुमारि का हाल सुनिये, वह रोज-२ इन्तजार करती रही आखिर तीजों का दिन आ ही पहुंचा। उस दिन वह बड़ी प्रसन्न थी क्योंकि पति से मिलने की आशा थी, उसने स्नान करके अच्छे वस्त्र आभूषण पहने। फूलों की बेंनी अपने केशों में लगाली। सारा दिन पूजा और त्यौहार की रीति रस्म में व्यतीत हुआ। शाम हो गई सूरसैन न आये। अब कुछ व्याकुलता बढ़ने लगी। वह लडाई में गये थे ईश्वर जाने क्या हुआ हो ! खबर भी कुछ नहीं मिली थीं। उसकी चिंता घडी-घड़ी बढ़ने लगी। अब तक उसने कुछ सोच विचार नहीं किया था। क्या कारण हुआ जो स्वामी अब तक न आये। आधी रात के लगभग व्यतीत होने को आई कुछ खबर नहीं मिली। वर्षा जार-शोर से हो रही है। बिजली कड़क रही है। किसी आदमी के आने की आहट तक नही मिलती। हे ईश्वर ! क्या हुआ ? वह क्यों नही आये ? क्षत्री के बचन झूठे नहीं होते। आखिर क्या कारण है ? इसके चित्त में चिंता की आग जलने लगी वह रह-रह कर अति व्याकुल होती थी। दिल को कल नहीं पड़ती थी।

बिरहन दिया संदेशरा सुनो हमारे पीउ।
जल बिन मछली क्यों जिये पानी में का जीउ।

कबीर सुन्दर यों कहे सुनिये कन्थ सुजान।
बेग मिलौ तुम आय के नहीं तो तजूं प्राण।
मानस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग।
साहब अबहु न आइये कोई मन्द हमारे भाग।
कै बिरहन को मौत दे कै बेगि सुरत दिखाय।
आठ पहर का बाजना मोपै सहा न जाय।

बिरह प्रबल दल साज कर घेर लिया मोहि आय।
नही मारे छोड़े नहीं तड़प तड़प जिया जाय।
देखत-देखत दिन गया निश भी देखत जाय।
बिरहन पिया पावै नहीं बेकल जिया घबराय।
सो दिन कैसा होइगा हरि गहेंगे बांह।
अपना कर बैठावहि चरन कमल की छांह।
हृदय भीतर दो जले धूंआं न प्रगट होय।
जाके लागी सो लखै कै जन लाई सोय।
बिरह भुअंगिन बस करी किया कलेजा घाव।
बिरहन अंग न मोड़हि ज्यों भावे त्यों खाव॥

सती का प्रेम अंग बढ़ता गया। बिरह की अग्नि प्रचण्ड हो उठी! पास एक खाट पड़ी हुई थी। उस दिन स्त्रियां खाट पर नहीं सोती। पर प्रेम के अंग में कुछ नहीं सूझता! रस्म रिवाज का ध्यान भी मन से जाता रहता है। वह साधवी स्त्री उस पर पड़ी रही। समाधि की दशा लग गई। दीन व दुनियाँ का विचार जाता रहा। और इसी दशा में पति के वियोग में उसने रात के तीसरे पहर में अपने प्राण त्याग दिये और प्रेम की पदवी को प्राप्त कर लिया।

जब पति ही हाथ से ऐ दिल मेरे जाता रहा।
दिल की भी परवा नहीं जाता रहा जाता रहा ।।
किस कदर बिरहा का पति के मुझे अफसोस है।
लेटते ही प्राण पक्षी जिस्म से जाता रहा ।।

इधर साँडनी सवार भी भागा चला आ रहा है। साँडनी बहुत तेज है वह सिर से पाँव तक तर बतर हो रहा है। पर शौक का कदम आगे बढ़ता जाता है। न मेह का ध्यान न बिजली का डर। वह ऐसा बेसुध होकर बगटट चला आ रहा हे। राम राम करके किसी प्रकार रास्ता तै हुआ। वह घर पहुँचा। दरबान ने पुकारा कोन ? उसने कहा मैं हूँ सूरसैन, दरवाजा खोलो ? फटक खोल दिया नौकर चाकर स्वामी का बोल सुनकर जाग उठे। पर उभयकुमारि नहीं आई। सूरसैन ने पूछा रानी कहां है ? एक बांदी ने हाथ जोड़कर कहा महाराज ! रानी जी ने आज व्रत रक्खा था। दिन भर आपके मिलने की खुशी में मग्न थी। शाम तक आपका भरोसा रहा। आज चार महीने के बाद रानी जी ने नये कपड़े और जेवर पहिने थे। आपकी पूजा के लिये व्याकुल थी। जब आधी रात बीत गई आप नहीं आये तब मन मार कर सो रहीं है।

सूरसैन ने नये वस्त्र पहने और सीधा वहां पहुंचा जहां सती खाट पर पड़ी थी। सूरसैन ने पुकारा ? प्रये ! उठो सूरसैन आ गया। पर उठता कौन ? इसको आश्चर्य हुआ, उसने शीश पर हाथ फेरा। सिर में कुछ-२ गर्मी शेष थी। हाथ पांव ठन्डे पड़ गये थे। हाय प्यारी ! तू दो घन्टे भी सब्र न कर सकी। सूरसैन के लिये दुनियां को अंधेरा कर चली। सूरसैन की जो हालत थी उसका वर्णन कठिन है।

उसने बन्दियों को आवाज दी। सब आई और रानी की दशा देखकर उन्होंने रोना पीटना मचाया कि जिसका कोई ठिकाना नहीं।

सूरसैन ने कहा अच्छा जो होना था हो चुका अब बाहर जाओ! और जब सब लोग बाहर चले गये तो सूरसैन ने एक नजर से अपनी पत्नी को देखा। यह मालूम होता था मानो अब भी वह सुहागवति है। रोते हुये सूरसैन ने उसको प्रेम भरी दृष्टि से देखा और कमर से कटार खींच कर अपने कलेजे में भौंक ली और उसके साथ उसी खाट सो गया। इस प्रकार दो प्यार करने वाली पवित्र आत्मा इस के दम में दुनियाँ से सिधार गये। प्रातः एक के बदले दो विमान निकाले गये। जिस जिस ने सुना वह ही सच्चे प्रेम की प्रशंसा करने लगे।

कबीर भटटी प्रेम की बहुतक बैठे आय।
सिर सोंपे सो पीयेंगे और से पिया न जाय।

जब लग मरने से डरे तब लग प्रेमी नांह।
बड़ो दूर है प्रेम घर समझ लेउ मनमांहि॥

इसे भी पढ़िये!

क्या आपने अपना वार्षिक शुल्क भेज दिया?
यदि नहीं तो शीघ्र भेजिये ताकि पत्रिका
आपकी आगे भी सेवा कर सके।

धन्यवाद!

धन्यवाद

श्रीमती शामकुमारी अग्रवाल W/o परसराम अग्रवाल आदमपुर दोआबा जालन्धर पंजाब ने "मनुष्य बनो" की सहायतार्थ 500/- रु० भेजे हैं। आपने यह पैसा ऐसे समय में भेजा जब कि 'मनुष्य बनो' आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहा है। हम मालिक से आपकी सुख समृद्धि एवं शान्ती की मनोकामना करते हैं और आशा करते हैं कि वे 'मनुष्य बनो' के प्रकाशन में हमें प्रोत्साहित करती रहेगी।

स० सम्पादक

श्री राधेरमन जी विवेकानन्द नगर, वाराणसी ने अपनी सुपुत्री के शुभ विवाह पर पत्रिका हेतु 51/- रु० भेजे हैं। मनुष्य बनो परिवार वर-कन्या को शुभ आशीर्वाद देते हुए उनके शुभ मंगल जीवन की कामना करता है।

स० सम्पादक

मानव कल्याण सभा, चन्डीगढ़ ने मनुष्य बनो' पत्रिका के संचालन हेतु 2100/- रु० भेजे हैं। हम चन्डीगढ़ सभा के हृदय से आभारी हैं जिन्होंने हमें पत्रिका के प्रकाशन हेतु अमूल्य धनराशि भेजकर इस कार्य को करते रहने हेतु सम्बल प्रदान किया है।

महेशचन्द्र

स० सम्पादक

सत्संग

मनाली—१२-६-७०

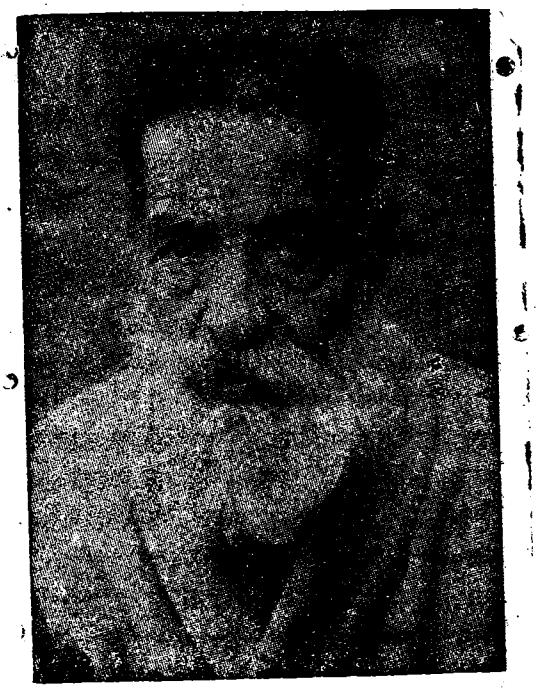

(परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज)

सारतत्व [असलियत]

सन् १९०५ ई० में जब मैं किसी वस्तु की खोज में रोया करता था तो एक दिन २४ घंटे रोने के बाद एक स्वप्न द्वारा दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

के प्रातः ५ बजे दर्शन हुए। जहाँ से विश्वास हुआ कि वह मेरे लिये, जिस वस्तु को मैं चाहता था, उसके रूप का अवतार थे। उनको हर हफ्ते एक लिफाफा लिखा करता था। दस महीने के बाद आपने मुझे उत्तर दिया—'फकीर तेरे पत्र मिलते हैं, मैं तेरी भावनाओं की कदर करता हूं। मैं ने सारतत्व (असलियत) सत् (हकीकत) सचाई और शान्ति राधास्वामी मत में हुजूर महाराज राय सालिग राम जी से प्राप्त की है। यदि तुमको इस रास्ते पर चलने से इंकार न हो तो तुम लाहौर आकर मुझको मिल सकते हो।'

मैं उनके दरबार में गया। वहाँ उन्होंने 'सार बचन पद्य' पाठ के लिये दी। जब इनका माया सम्वाद पढ़ा, पाठ किया तो घबड़ा गया। क्यों? क्योंकि उसमें खंडन था सब धर्मों को, वेदान्त और सूफीज्म सहित काल और माया रक्खा और संत मत को एक निराला और सबसे ऊँचा प्रगट किया। दातादयाल ने उस समय कहा कि फकीर सार 'बचन' को छोड़ दो। फिर संत कबीर की शब्दावली और हुजूर महाराज का जीवन चरित्र पाठ के लिये दिया और नाम दान या नाम की दीक्षा दी। मैंने उस समय प्रण किया था कि इस रास्ते पर चलने से जो कुछ मुझको मिलेगा मैं संसार को बता जाऊँगा। आज मेरी ८३ वर्ष की आयु है। दाता दयाल के चोला छोड़ने के ३१ वर्ष के समय में मानव जाति के कल्याण तथा निर्बल अबल अज्ञानी जीवों के भले के लिये और इस माया और काल के चक्र अर्थात् भवसागर से पार होने के लिये मैंने अपना निज अनुभव कहा और लिखा।

आजकल मैं मनाली वादी, कुल् में हूँ। स्वास्थ्य के विचार से यहाँ आया हूँ। ख्याल आया कि यह चार शब्द हैं—असलियत (सार तत्व) हकीकत (सत्) सचाई और शान्ति जो दाता दयाल ने सन् १९०५ ई० में मुझको लिखे थे, इन पर अपना निज अनुभव वर्णन करूँ।

—: ० :—

१ असलियत [सारतत्व]

असलियत क्या है ? वास्तव में यह सारा संसार और मनुष्य क्या हैं ? इसके ज्ञान का नाम असलियत है। मुझे इसका निज अनुभव कैसे हुआ या मैं क्या समझता हूँ कि असल क्या है और असलियत क्या है, वह कहता हूँ। जब से गुरु पदवी पर आया देश के भिन्न-भिन्न भागों से और विदेशों से लोगों ने मुझको लिखा कि मेरा रूप उनकी सहायता करता है जाग्रत में, स्वप्न में, अभ्यास में और मरते समय ले जाता है मगर मैं नहीं होता और न मुझे कोई पता होता है। तो मुझे यह निश्चय हो गया कि असल क्या है ? असल है मनुष्य का अपना स्वरूप। मनुष्य स्वयं असल है। उसके अन्तर जाग्रत में, स्वप्न और सुषुप्ति में, तुरिया, तुरियातीत में जो कुछ प्रगट होता है अथवा सहसदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न में प्रगट होता है वह बाह्य जगत के प्रभाव हैं, Suggestions हैं जो उसके दिमाग पर पड़ते हैं। उसका जो दिमाग है वह भी बाहर के सितारों, लोक लोकान्तरों की किरणों से प्राकृतिक रूप से, माँ बाप में कारण तथा खाद्य पदार्थ

खाने के कारण होता है। असल में यदि कोई वस्तु असल है तो वह है जो इस दिमाग में बैठकर इस समस्त बाहरी प्रभावों का भान करती है। इस बात का निश्चय हो जाना कि मनुष्य का अपना स्वरूप (जात) मुख्य है शेष सब गौण हैं, तो यह मेरी समझ में असलियत आई है।

मैं बचपन से उस मालिक से मिलना चाहता था जिसने यह सृष्टि बनाई है। अब जीवन के अनुभव ने मुझे यह सिद्ध किया है कि असली और सच्चा मालिक इस संसार में नहीं है। यदि कुछ यहाँ है तो यह प्रकृति, माया, स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ। असली मालिक वह है जहाँ न स्थूल पदार्थ है न सूक्ष्म न कारण। जितनी भी रचना है वह इस रचना से बिल्कुल भिन्न है। न वह जन्मता है न मरता है, वह क्या है, क्या नहीं है, यह वर्णन नहीं हो सकता, बुद्धि में नहीं आ सकता। वह अनुभव में आता है कि वह है ! है और अवश्य है ! वह है आधार, कूटस्थ, जात मुतलक। मनुष्य की शक्ति या एनरजी जिसको सुरत कहते हैं, जब देह, मन, प्रकाश और शब्द को छोड़कर उसकी खोज में ऊपर को हो जाती है वह उस मालिक की अंश है। मेरा ऐसा अनुभव है मगर कभी कभी मैं इस अनुभव को गलत भी समझता हूँ। क्यों ? क्योंकि यदि मैं अर्थात् मेरी सुरत देह, मन और आत्मा से परे पहुंच कर वह हो सकती है तो फिर वह क्यों इस संसार में आती है। उसमें शक्ति होनी चाहिये यदि वह उस सर्वाधार की अंश है, तो किसी दूसरे को न सही, अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान बोध पर इतना काबू हो कि वह इनको बदल सके। मैं कई बार सोचता हूँ कि सम्भव है मेरा अनुभव गलत हो। मैं वहां तक न पहुँचा हूँ मगर

जब मैंने इन पिछले महापुरुषों के जीवन को देखा, पढ़ा जो संत-सतगुरु कहला गये तो वह भी अपनी सांसारिक, मानसिक और आत्मिक अवस्थाओं को अपनी इच्छानुसार न बदल सके।

उदाहरण सुन लो—दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी ने धाम बनाई, वह उनके जीवन में ही उ ड़ गई। परिस्थितियों ने उनको विवश किया और धाम छोड़ गये। बाबा सावनसिंह जो इतने बड़े डेरे के मालिक थे, संत सतगुरु कहलाते थे, पिछली आयु में शारीरिक कष्ट से अत्यन्त पीड़ित रहे। मुझे याद है कि सन् १९४२ ई० में जब में इनके दरबार में गया, उन्होंने मेरे सामने सत्संग में कहा था कि मेरे बाद मेरा कोई भी रिश्तेदार डेरे की ओर नहीं देखेगा किन्तु बाद में रिश्तेदारों के प्रभाव में आकर किसी न किसी ढंग से गद्दी अपने ही घर में रखने के लिये वे विवश हुए।

साहब जी महाराज, पिछली आयु में दयाल बाग में प्रतिकूल परिस्थिति पैदा होने के कारण मद्रास चले गये। वहीं पर उनका शरीर छूटा।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने जिनके नाम के अब झन्डे लग रहे हैं पिछली आयु में गले में कैंसर के रोग से बुरी तरह पीड़ित रहकर चोला छोड़ा। शम्स तबरेज को जो मौलाना रूम के गुरू थे, पिछली आयु में शादी का शौक लगा। मौलाना रूम ने एक कनीज के साथ उनकी शादी करा दी। मौलाना रूम का लड़का उस कनीज पर मोहित हो गया और उसके हाथों से शम्स तबरेज मारे गये।

पलटू साहब बहुत बड़े सन्त कहलाते थे। वह यहां तक दावा कर गये—

साधोभई ! हम वहां के बासी, जहां पहुँचे नहि अविनाशी।

और लिख गये कि सन्त ईश्वर की आज्ञा को टाल सकते हैं मगर दूसरे साधुओं के हाथ से जिन्दा तेल के उबलते हुये कढा में जलाये गये।

गुसाई तुलसीदास रामायण के रचियता पिछली आयु में तीन वर्ष शारीरिक दर्द से बड़े पीड़ित रहे।

स्वामी जी (शिवदयाल सिंह जी महाराज) स्वयं अन्तिम दिनों में दो वर्ष बड़े बीमार रहे।

ऐ भारतवर्ष के धार्मिक और पाँथिक जगत के लोगों मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। इस प्रजा तन्त्र राज में हर एक को अपना अनुभव कहने का अधिकार है इसलिये कह रहा हूँ —

असलियत क्या है ? असलियत एक तत्व है। यह मानव बुद्धि के दृष्टिकोण से कह रहा हूँ। वह है इस बात का विश्वास रखना कि इस दुनिया का कोई आधार है। और इस दुनिया में रहते हुये, चूंकि इस दुनिया का काम संकल्प के आधार पर है, कर्म के आधार पर है, कोई काम बिना नियम के नहीं होता इसलिये यहां असलियत क्या है ? यह है कि मनुष्य अपने स्वार्थ व अपनी गरज के लिये किसी दूसरे मनुष्य को तंग न करे। उसका माल हड़प न करे। उसको दुःख न दे। मैं ऐसा क्यों कहता हूं ? क्योंकि ऋषियों के अनुभव, बौद्ध और जैनियों के अनुभव कर्म की फिलोसफी को मानते है। यदि इस समस्त महापुरुषों को कुछ मिला—मान, बड़ाई, गद्दी, कष्ट तो वह उनके कर्मों के अनसार मिला।

विशेष सूचना

प्रेमी सत्संगी जन को सूचित करते हर्ष हो रहा है कि हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 'मानवता मन्दिर' होशियार पुर के पवित्र प्रांगण में गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व बड़ समारोह के साथ तारीख 12-7-95 को मनाया जायेगा। इस शुभ अवसर पर परम पुरुष पूर्णधनी सन्त सद्गुरु हिज होलीनेस हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज अपने परा आध्यात्मिक सत्संग का अमृत वर्षा फरमावेंगे। मानवता मन्दिर के सभी आचार्य और महात्मा जन इस पुनीत अवसर पर अपने अनुभव सम्पन्न प्रवचन करेंगे।

सभी प्रेमी सत्संगी जन इस सुनहरे शुभ अवसर से लाभ उठाकर अपना लौकिक जीवन सफल करने के लिये सादर आमन्त्रित हैं।

गुरु पूजन	12-7-95	प्रातः 7 बजे से 8 बजे तक
सत्संग	,,	प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक
,,	,,	सायं 4 बजे से 6 बजे तक

टिप्पणी : बाहर से आने वाले सज्जनों के लिये ठहरने व लंगर का प्रबन्ध होगा।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १३ नव०, १९८८

सुधा मितल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक-सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र [illegible]
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्री[illegible]

BOOK-POST

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान Sri Chilwar Narsimhlu
Hanmantlu
General Stores
V& PO. Banswada mandal
Nizamabad. AP.
503187

(परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज

सत्संग

प्रवचन—३१-५-७०

[परम शाँति]

मैं पिछले महीने भी यहाँ आया था और जो कुछ मेरे जीवन का अनुभव था, वह कहा था, चूंकि मुझको मेरे अनुभव ने सिद्ध किया कि राधास्वामी मत या सन्त मत की शिक्षा से मुझे शांति मिली है इसलिये मैंने उसकी प्रशंसा की।

मुझे एक चिटठी यहां से गई। कोई अमरजीत सिंह है उन्होंने मुझको लिखा कि मैंने आपका सत्संग सुना। आप अपने आपको सन्त सतगुरु कहते हैं। यह आज दिन तक किसी ने नहीं कहा। उसका कथन ठीक है। मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ। मैं कहता हूँ कि कोई सन्त सतगुरु हो तो वह कहता कि मैं सन्त सतगुरु हूं। कबीर ने कहा है —

मैं आदि घर का भेदी लाया हुक्म हुजूरी।

ऐसा शब्द है। सतगुरु किसे कहते हैं? सतगुरु नाम है सच्चे भेद का, सच्चे ज्ञान का। यह भेद कोई महात्मा देत नहीं। सारी दुनिया को अपने जाल में फँसाया हुआ है। आज यह भेद देना चाहता हूँ जिसको प्राप्त करने के

बाद, यह मैं कहता हूँ कि मैं सत ज्ञान दाता हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि जो मुझे पूजेगा, मुझे मत्थे टेकेगा, रुपया देगा वह तर जायेगा किंतु यह कहता हूँ कि जो मेरी बात को समझेगा, इस रहस्य को समझेगा, वह लाभ उठायेगा।

वह भेद क्या है? गुरु की ड्यूटी क्या है? वह भेद देता है, ज्ञान देता है। राधा स्वामी दयाल की वाणी है —

गुरु ने दीना भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥
बल पाया अब बिरह मरम का।
भटकन छूटा देर व हरम का॥

अब इस वाणी को सुनो और आंखें खोलो! कहते है गुरु ने भेद दिया है। वह जो भटकना थी वह मिट गई वह जो आवागवन था, ८४ का भय था, वह जाता रहा। मनुष्य की जो ८४ हैं उससे बचने के लिये ही हिंदू जाति अनेक प्रकार के उपाय करती है। तुम चौरासी से बचने के लिये ही व्यास में या आगरे में या दूसरी जगह हाथ बांधे गुरु के आगे फिरते हो कि मेरी चौरासी कट जाय। तुम्हारी चौरासी कब काटी जायेगी? जब तक तुमको भेद नहीं मिलता उस समय तक तुम्हारी चौरासी काटी नहीं जाती। चाहे बाबा सावनसिंह को गुरु बना लो, राम को या रब को गुरु मान लो, यह चौरासी का भ्रम दूर नहीं हो सकता। यह जब दूर होगा रहस्य मिलने से दूर होगा।

आज मैं सत्संग में तुम लोगों को वह भेद बताना चाहता हूँ, यद्यपि हर एक आदमी इसको समझ नहीं

सकता। क्यों? क्योंकि मनुष्य का मन निश्चल नहीं है। तन थिर नहीं, सुरत थिर नहीं। जब तक उसका मन या सुरत थिर नही होती तब तक उसकी समझ नही आती। इसलिये सन्तों ने सुमिरन, ध्यान और भजन दिया हुआ है कि सुमिरन, ध्यान और भजन करने से तुम्हारा मन थिर हो जाय और तुम किसी गुरु की बात समझने योग्य हो जाओ। टिकाव से शांति मिलती है।

बरसन लागा मेघ करम का।
संशय भागा जनम मरन का॥
तोड़ दिया सब जाल निगम का।
सुख पाया अब हम दम दम का॥

अब ठीक चौरासी से बचने के लिये गुरु के पास नहीं जाते हैं। तुम मेरे पास आये। तुम्हारी स्त्री के बच्चा नहीं होता है। कोई आता है मेरा मुकदमा है। कोई और कुछ कहता है। चूंकि दुनिया को इस वस्तु की आवश्यकता नहीं इसीलिये सन्तों ने इस रहस्य या भेद को आम पब्लिक में नही खोला दूसरे सन्तों को अपने डेरे धाम मन्दिर, मस्जिद आदि की आवश्यकता थी। इसीलिये भी उन्होने भेद गुप्त रक्खा।

मैं वह भेद देना चाहता हूँ। मैं उस मालिक को मिलने, ८४ से बचने के लिये सात वर्ष की उमर से लगा था। मैं आप तो राधास्वामी मत या सन्त मत में आया नहीं। मेरे हृदय की कुरेद थी। एक दृश्य द्वारा अपने सतगुरु दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के चरण कमल में पहुँचा। उन्होंने मुझको राधास्वामी मत की शिक्षा दी या भेद दिया मगर मेरी समझ में नहीं आता था

पुस्तकों में बहुत कुछ लिख दिया। यह समझ देने के लिये मुझे गुरु बना दिया। यह भेद मुझको तुम लोगों के द्वारा मिला इसलिये मैं कहा करता हूँ कि मेरे सतगुरु सत्संगी हैं। क्यों कहता हूँ ? दुनिया यह समझती है कि कोई बाहर का गुरु तुमको मरते समय सतलोक में ले जायगा।

चार दिन हुये सूबेदार त्रिलोचन सिंह होशियारपुर में मर गया। उसको डायबिटीज (मधुमेह) २०-२५ साल से थी, जिसके कारण उसके फोड़े उठते थे। दस महीने हुये उसके पाँव में फोड़ा उठा था। उसकी स्त्री मेरे सत्संग में आती रहती है बड़ी भक्त है। उस समय वह कहती है, बाबा आप मेरे सामने अस्पताल में प्रगट हुये। उसने मुझको देखा तो मैंने उसको कहा बेटी ! तेरा पति ठीक हो जायगा। अब मैं तो गया नहीं, उसको कुछ कहा नहीं यद्यपि मैं चाहता था कि वह ठीक हो जाय और उस समय वह नीराग हो गया। ६ महीने के बाद फिर उसको फोड़ा हुआ। उसको अस्पताल में दाखिल किया गया। वह स्त्री रोती हुई मेरे पास आई। बाबा ! मैंने एक दृश्य देखा है। जो मेरे पति के लिये बड़ा भयानक है। बीस दिन अस्पताल में रहने के बाद उसका पति मर गया। दोपहर को उसका आदमी मेरे पास आया कि सूबेदार की हालत बहुत खराब है। आप चलिये। गर्मी थी। मैंने मामचन्द को कहा यह अलूचे का प्रसाद ले जाओ और उसको दे दो। जो होना है वह तो होकर रहना है। मामचन्द गया, हालत खराब थी। जाकर कहा, सूबेदार साहब ! यह प्रसाद दिया है पिताजी ने। खालो। उसके मुंह मे अलूचा दे दिया। उसने खाया और गुठली अपने हाथ से निकाल

कर फेंक दी और दो मिनट बाद शरीर त्याग दिया। उसकी छाती पर उस समय मेरी फोटो रक्खी हुई थी। अब मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि वह तो तेरा ध्यान करता हुआ मरा, तेरा प्रसाद खाकर मरा। क्या तुझे पता था कि उसका दम कब निकला? मुझे पता नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि जितना तुम्हारा यह ख्याल है यह तुम्हारे अपने मन का है। जिनका मन शुद्ध है उनके हृदय भी शुद्ध होते हैं। जिनका मन अशुद्ध है उनके हृदय भी अशुद्ध होते हैं।

उस समय पिछले सत्संग में मैंने कहा था कि मैं सतगुरु हूँ। यदि वह व्यक्ति जिसने चिट्ठी लिखी थी यहाँ बैठा हुआ है तो उसको कहता हूं कि मैं अपने आपको सन्त सतगुरु क्यों कहता हूँ? मैं तुमको सच्चा ज्ञान देता हूं। तुम इन बातों में आकर कि अन्त समय में बाबा फकीर या कोई और देवी देवता ले जाते हैं तुम लुट गये। यह समझकर कि बाबा फकीर बड़ी करनी वाला है। वह अन्त समय आकर तुमको ले जायगा। तुम मानवता मन्दिर में हजारों रुपया लगा देते हो और मुझसे यह आशा करते हो कि मैं तुमको सतलोक ले जाऊंगा यह गलत है, यह है भेद और यही भेद हुजूर महाराज राय सालिगराम साहब ने अपनी वाणी में लिखा है कि अन्त समय में फिल्म चलती है। जिन जिनसे लगाव या आसक्ति होती है वह दिखाई आते हैं। जिस गुरु से नाम लिया हुआ है वह भी दिखाई आता है और कुछ समय तक उसकी सुरत को ऊपर ठहरना होता है। फिर जब कोई संत सतगुरु दुनियाँ में आता है फिर वह बाकी की कमाई पूरी करता

है। जो लोग सदा-सदा के लिये बचना चाहते हैं उनको मैं भेद देता हूँ कि ऐ मानव जाति ! तुमको इन सम्प्रदायों पन्थों, महात्म'ओं ने मूर्ख बनाया हुआ है। लोग मरते हैं। मेरा रूप आ जाता है। अब मैं तो कहीं जाता नहीं पता नहीं होता कि वह क्या है ? यह तुम्हारी अपनी ही श्रद्धा विश्वास और अपना ही विचार है। लोग इस रहस्य से अनजान है। किसी के अन्तर राम प्रगट हो गया। उसने कहा राम ने मेरा काम कर दिया, इसलिये उसने राम का मन्दिर बनवा दिया या कृष्ण का मन्दिर बनवा दिया। चूंकि उसका काम बन गया। उसने समझा कि कृष्ण आया है। किसी ने बाबा फकीर का मन्दिर बनवा दिया इस ज्ञान का परिणाम यह निकला कि हम एक मानव वंश होते हुये इस काल रूपी मन ने हमको बाँट दिया। बाहर से न कोई राम या कृष्ण आता है न कोई गुरु महात्मा आता है। ऐ इन्सान ! यह सारा खेल तेरे अपने मन का है।

अब उसने जिसने मुझे चिटठी लिखी उसमें लिखा कि आप झूँठ बोलते हैं। इस समय का सतगुरु सन्त कृपाल सिंह है और कोई नहीं। अब वह अपने अज्ञान से सन्त कृपाल सिंह को सन्त सतगुरु मानकर दूसरे जहाँ, जहाँ लगे हुये है उनको तोड़ता है आपस में भेद भाव फैलता है। मैंने यह समझकर कि दुनिया असलियत से अनजान है इस सचाई की घोषणा कर जाऊँ ताकि जिसकी बुद्धि है वह अपना जीवन आप बना ले और हमारा आपस का जो झगड़ा है— हिंदू, सिख, मुसलमानों का वह मिट जाय। केवल इस एक ख्याल को लेकर मैंने शिक्षा का क्रम जारी किया है।

गुरु ने दीना भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥

यहाँ रस्सी पड़ी हुई है। रात का समय है। तुम समझते हो यह साँप है। तुम भ्रम में आकर भाग जाते हो, वास्तव में वह साँप नहीं है। वह रस्सी है। इसलिये मैं उन भ्रमों को तोड़ना चाहता हूं जो सच्चाई के इच्छुक हैं और अपने घर जाना चाहते हैं।

मैंने उस व्यक्ति को जिसने चिटठी लिखी थी, लिखा था कि अगर सन्त सतगुरु कोई होता तो इस भेद को खोल कर बताता। क्या किसी ने ऐसा स्पष्ट कहा? बाबा सावन सिंह कहा करते थे कि बैठ जा बैठ जा! मैं तो सिरसे था। कोई और होगा। कोई सन्त सतगुरु होता तो वह दुनिया को सच्ची बात कहता। क्यों नहीं कही? इसके दो कारण है। एक तो जीवों को सचाई की जरूरत नहीं। बाबा सावनसिंह कहा करते थे कि यदि मैं साफ बात कहूँ तो तुम में से कोई डेरे में न आवे। तो यह मन्दिर धाम कैसे बने? मुझे इस स्पष्ट वर्णन से कोई नहीं देता। यदि पर्दा रखता कि हां मैं जाता हूं तो लोग अज्ञान से मुझे देते।

वह सूबेदार त्रिलोकसिंह मरा। पहिली बार जब उस की स्त्री ने कहा तो मैंने कहा मैं नहीं गया। उसके लड़के ने जो फौज में नौकर है, १०१) रुपये मन्दिर में भेजा, क्योंकि उसका बाप ठीक हो गया था। जब त्रिलोचन सिंह की स्त्री आई तो मैंने उससे कहा बेटी! तेरे लड़के का १०१) रु. का मनीआर्डर आया है तू लेजा। मैं नहीं रक्खूंगा तू अज्ञानिन है। मैंने तेरे पति को नहीं बचाया।

यह तेरे अपने कर्म हैं। अब जब वह मरा यदि मैंने स्पष्ट वर्णन न किया होता तो क्या मुँह लेकर उस सूबेदारनी के सामने खड़ा होता। मैं यह भेद दे रहा हूँ कि जितने रूप तुम्हारे अन्दर प्रगट होते हैं यह तुम्हारे अपने ही विचार हैं भाव हैं।

एक सूरतसिंह सत्संगी था। पौने पांच सौ वेतन लेता था। कलकत्ते में लोको फोरमेन था। जब दाता दयाल की समाधि बन रही थी उस समय उसके अन्तर मेरा रूप प्रगट हुआ। मेरे रूप ने कहा कि समाधि के लिये ५००)रु. भेज दे। उसने प्रागलाल को धाम पर रुपये भेज दिये। उसने मुझे लिखा। मैंने गलती की कि मैंने स्थिति स्पष्ट नहीं की। चुप कर गया। परिणाम उसका यह निकला कि साल भर के अन्दर उसने कोई बुरा कर्म किया। उसने मुझे लिखा कि जब आपने रुपया लेना था तो मुझे कह दिया। जब खोटा कर्म करने लगा तो आपने मुझे नही बताया। वह अपने कुकर्म के कारण पागल हो गया और डेढ़ वर्ष के बाद मर गया।

भटनागर साहब ! तुम मुझे बुलाते हो ! मेरे सत्संग के अधिकारी लोग नहीं हैं। मैं तो अवतार हूँ। सन्त सत्-गुरु हूं। मैं समय की आवश्यकता के अनुसार कहता हूं। ऐ भोले भाले जीवो ! तुमको भेद नहीं मालूम। मैं उठा मैंने तुमको अपने जाल में फंसाया। दूसरा उठा उसने फंसाया। सचाई किसी ने वर्णन नहीं की। आर्य समा-जियों ने तुमको आर्य समाजी बनाया। सिक्खों ने तुमको सिक्ख बनाया। जैनियों ने जैन बनाया। मुसलमानों ने तुमको मुस्लिम बनाया।

गुरु ने दीना भेद अगम का।
सुरत चली तज भेद भरम का॥

ऐ सत्सगियों! तुम्हारी बदौलत मेरा भ्रम दूर हुआ और मैं निज घर जाने के योग्य हुआ। मेरा भ्रम कैसे गया? जब मुझको तुम लोगों से यह पता लगा कि मेरा रूप अमरीका, अफ्रीका में प्रगट हुआ और मैं था नहीं तो मुझे यह निश्चय हो गया कि मेरे अन्तर जो रूप विचार भाव हुआ करते थे वह थे नहीं मगर भासते थे। जिस प्रकार इस सूबेदार के अन्तर अस्पताल में बाबा फकीर प्रगट हुआ और मैं नहीं था मगर उसने यह समझा कि यह फकीरचन्द है। यह उसका भ्रम था। इसी तरह मेरे अन्तर जितने विचार उठते हैं उनको मैं समझता हूँ कि यह माया है। हैं नहीं मगर भासते हैं। चूँकि मुझे अपने घर जाने की लगन थी तो उन रंगों को छोड़ कर प्रकाश या पारब्रह्म में जाने को विवश हो गया क्यों कि प्रकाश जब शरीर में आता है तब मन बुद्धि चित और अहंकार पैदा होते हैं। मैं अब साधन कहां करता हूं—

बरसन लागा मेघ करम का।
संशय भागा जनम मरन का॥
तोड़ दिया सब जाल निगम का।
सुख पाया अब हम दम दम का॥
फल पाया आज हम सम दम का।
भंवर हुआ मन सेत पदम का॥

सेत—सेत कहते हैं सफेद को। वह जो पारब्रह्म सफेद रंग का प्रकाश हैं वहाँ जाने के मैं योग्य हुआ क्योंकि मुझे भेद मिल गया। क्या भेद मिला? यही कि मन के

अन्तर जितने विचार उठते थे यह माया थे। थे नहीं मगर वह भासते थे। मैं जानता हूँ कि मैं ऊँचा बोल रहा हूं। जीवों में इतना बल नहीं है कि वहां तक पहुँच सके। हाँ सम और दम करोगे तो वहां तक पहुँच जाओगे।

सम दम क्या है ? केवल किसी पूर्ण गुरु की संगत में जाकर बैठना, उसके दर्शन करना, उसे प्रेम करना, उसके वचनों को सुनना, गूनना और मनन करना। सन्त मार्ग में इन्ही को मुख्य कर्म माना है मगर किनके लिये ? उनको जो अपने घर जाना चाहते हैं, जिनको संसार में सच्ची शांति नहीं मिलती, ८४ को काटने की जिनको आवश्तकता है। यह मार्ग संसारी जीवों के लिये नहीं है। दुनियादारों के लिये है वेद मार्ग—जैसा तुम्हारा ख्याल वैसा तुम्हारा हाल है, जैसी करनी वैसी भरनी, जेसी मति वैसी गति। दुनिया में रहते हुए अच्छे विचार रक्खो क्योंकि मनुष्य का विचार जब घना हो जाता है तब यह रूप बना लेता है। जब तुम्हारा विचार, संकल्प अति तीव्र होने के कारण या प्रेम के कारण घना हो जाता है तब यह स्थूल रूप धारण कर लेता है। यह संसार मनोमय है। माया रूपी जगत है। इसका अनुभव मुझे नही होता था। अब हो गया।

एक लड़के ने मुझे लिखा —बाबा ! मुझे साइंस का पर्चा हल नहीं होता था। घबराया। परीक्षा हाल में आप को याद किया। आप आ गये। आपने कहा लोग मुझे देख लेंगे। मैं तुम्हारे डैस्क के नीचे बैठ जाता हूं। आप बोलते गये, मैं लिखता रहा। इसमें से मेरे १०० में से ९८ नम्बर आये। कोई कहता है मैंने नदी में डूबते हुये को बचाया है। यह डा० परसराम बैठा हुआ है। इसकी स्त्री

आद पुर से होशियारपुर के लिये चली। अँधेरा था, डरी। वह कहती बाबा ! तुझे याद किया तू आ गया। एक फर्लांग तक बातें कर स्टेशन तक पहुँचे। आपने कहा बेटी ! गाड़ी आ गई। अब मैं जाता हूँ और आप लोप हो गये।

यह तुम्हारा अपना ही संकल्प है जो घना हो जाता है। इसलिये मैं दुनिया को रहस्य या भेद बताता हूं। बुरी बात मत सोचो। किसी के विरुद्ध कोई बात मत सोचो। किसी का बुरा मत सोचो। यदि संकल्प गहरा होगा तो तुरन्त प्रभाव कर जायगा। यदि दिन-प्रतिदिन कुढ़ते रहोगे घृणा द्वेष रखोगे, वह तुम्हारे ही विचार तुमको भी खा जायेंगे और जिनके बारे में सोचते हो उनका भी अनिष्ट करेंगे। उस लड़के का भय के कारण संकल्प बहुत तीव्र हो गया। वहाँ बाबा फकीर प्रगट हो गया। यदि संकल्प गहरा नहीं है, सामान्य है तो तुम्हारे विचार आपस में घृणा द्वेष तथा किसी की बुराई करना किसी को अच्छा न समझना यह धीरे धीरे मीठा जहर बनकर तुमको नष्ट कर देंगे।

स्वतन्त्रता आई। मैंने सन १९४७ में लिखा कि यह जो सिस्टम चुनाव का है यह संसार में घृणा द्वेष फैलाता है। पार्टीबन्दी होती है। यह देश को खा जायेगा। इस समय कोई शांतिप्रिय मनुष्य बंगाल में खुला नहीं घूम फिर सकता। मुझे कश्मीर जाना था। वहाँ से एक सज्जन की चिटठी आई कि बाबा जी यहाँ मत आना। समाचार पत्रों में कोई समाचार नहीं देता। यहाँ शाँतो नहीं है। यह क्यों है ? नित्य प्रति देश में कहीं न कहीं झगड़े होते

रहते हैं । इस समय शान्ति प्रिय मनुष्य सुख की नींद नहीं सो सकता । यह वर्तमान प्रजातन्त्र और चनाव प्रणाली का परिणाम है । मैं सन्त सतगुरु की हैसियत से पुकार कर रहा हूं कि वर्तमान चुनाव प्रणाली अत्यन्त दोषपूर्ण है ।

मैं अमरजीत के प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ कि मैं क्यों कहता हूं कि मैं सन्त सतगुरु वक्त हूँ । सतगुरु नाम है सच्चे ज्ञान का । तुमको सच्चा ज्ञान दे रहा हूँ । यह तो तुम्हारे घृणा द्वेष के विचार है, घरों में जो गैरियत रखते हो— भाई को भाई से, बेटे को बाप से, स्त्री को पति से, यह तुम्हारे विचार तुमको खा जायेंगे, तुमको नष्ट कर देंगे । इसलिये मैंने अपने आपको सन्त सतगुरु कहा है ।

मैंने राधास्वामी मत से क्या सीखा ?—

गुरु ने दीना भेद अगम का ।
सुरत चली तज देश भरम का ।।

गुरु क्या करता है ? भेद देता है रहस्य बताता है । प्राचीन काल में गुरु आज्ञा देते थे । रहस्य नही बताते हैं । अब बुद्धि बढ़ गई । क्या और क्यों का सवाल आ गया । त्रिलोचन की स्त्री अपने पति के मरने पर रोई नहीं । मैंने उसके रिश्तेदारों को कहा कि उसको रुलाओ ताकि गम के आँसू आंखों से निकल जांय । गम भी एक विचार है और खुशी भी एक विचार है । गम का विचार यदि बाहर न निकल जाय तो वह रोग पैदा कर देता है । हमारे पूर्वजों ने स्यापा इसलिये रक्खा था कि स्त्रियां आकर उस मृतक वाले के लोगों को रुलाती थी ताकि वह गम का विचार निकल जाय । मेरे मित्र थे बलीराम हकीम । उन का जमाई शादी के पांच साल बाद मर गया था । सत्संगी

था ज्ञानवान था, वह रोया नहीं । उसने धैर्य रक्खा । मुझे पता लगा । उसकी स्त्री आई । मैंने कहा यह रोया नहीं है । उसको कोई न कोई रोग होगा और मर जायगा । डेढ़ वर्ष के अन्दर उसको दिल का दौरा हुआ और वह मर गया । जो विचार हम सोचते हैं अच्छा या बुरा उसका प्रभाव हमारे मन तथा मस्तिष्क पर रहता है, यदि अच्छा हैं तो खुशी मिलेगी । इसका प्रभाव पड़ता है । इस मन से निकलने का इलाज क्या है ? वह है ज्ञान । क्या ज्ञान ! यह कि ऐ सुरत ! यह तेरा घर नहीं है । यह तो काल और माया का देश है । तू इस दुनिया में कर्म भोग वश खेल खेलने के लिये आई है । इस मन के, काल के रूप को समझ, यह काल और माया है । इसमें मत फँस । तेरा रूप पारब्रह्म है शब्दब्रह्म है । तू उसकी अंश है । यह भेद है जो मुझे अपने जीवन में मिला ।

जब राधास्वामी मत में आया तो यहाँ पढ़ा था कि वेदान्त, सूफीइज्म, सब काल मत में हैं तो मेरे हृदय पर इसका प्रभाव था । मैंने सन् १९०५ में प्रण किया था कि सच्चा होकर चलूंगा और जो मिलेगा बता जाऊँगा । आज कहता हूँ कि जो कुछ सन्तोंने कहा है वह ठीक है, तुम सिक्ख हो । मैं हिंदू हूँ । यदि मैं जरा भी नानक सहाब के विरुद्ध कहूं तो तुम मेरा सिर उड़ाने दौड़ोगे । स्वामी जी ने अपनी वाणी में वशिष्ठ, परासार, व्यास, वेदान्त आदि किसी को नहीं बक्शा । मैं बचपन से इस लाइन पर चला हूँ । जो कुछ मेरा अनुभव है उनके कहने का मुझे अधिकार है [illegible] किया है ? सुनो—

गुरु ने दीना भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥
बल पाया अब विरह भरम का।
भटकन छूटा फेरो हरम का॥

फिर नर्क और स्वर्ग क्या हुये ? हमारे मन के शुभ विचारों का रहना तथा आनन्द का रहना स्वर्ग है और अपने बुरे विचारों से दुखी होना नर्क है। अब मुझे स्वर्ग और नर्क का अनुभव कैसे हुआ ?

कुछ महीने की बात है मैं यहाँ आया था। एक हजारी सिंह सूबेदार यहां था। उसने अपने चचा का हाल सुनाया, उसके चचा का आपरेशन किया गया। उसकी गुदा पर फोड़ा था। डाक्टर ने कहा यह बचेगा नहीं। वह डेढ़ घटे तक आपरेशन के बाद बेहोश रहा। जब होश आया तो कहता है कि हजारीसिंह तूने मुझे बचा दिया। कैसे ? जब मेरा आपरेशन हुआ तो आदमी आये और मेरे सूक्ष्म शरीर को लेकर उड़ चले। आगे एक भयानक रूप की स्त्री बैठी हुई थी। उसके आगे और भी बहुत से सूक्ष्म शरीर रखे हुए थे। वह उनको खा रही थी। मैं डर गया कि यह मुझको भी खा जायगी। मैंने कहा मुझे मरना तो है ही तुम मुझे हजारी सिंह से मिला दो। वहां हजारीसिंह आ गया। मैंने कहा—हजारी सिंह ! बाबा को कहो मुझे बचावें। हजारीसिंह की बजाय वहाँ बाबा आ गया। बाबा ने उस स्त्री को कहा। तू इसको नहीं खा सकती। जा वापस चली जा। उन्होंने मुझे फेंका तो होश आ गया, मैं जानता हूं कि मैं नहीं था। वह नर्क क्या था ? वह उसके अपने मन की कल्पना थी। वह जो बाबा आ गया वह भी

उसके मन की कल्पना थी। तुम्हारे मन की कल्पना ही माया है। यदि तुम्हारे विचार बुरे हैं तो स्वप्न में भी डरोगे। मरोगे तब भी तुमको तुम्हारे विचार यमदूत बन कर तुमको भयानक रूप बना बनाकर डरायेंगे। न कोई राम, न जिन्द आता है न भूत। है यह तुम्हारा अपना ही मैन है। यदि अच्छा है तो अच्छी शक्ल बना लेता है और बुरा है तो बुरी शकल बना लेता है।

बल पाया अब विरह भरम का।
भटकन छूटा देरो हरम का॥

अब मैं पाप पुन्य स्वर्ग नर्क को क्या समझता हूं? यही कि यह मन का ही ख्याल है। विचार को काबू कर लिया। अपने रूप प्रकाश और शब्द जो सत है को पकड़ने को विवश हुआ। तुम सब सतपुरुष की अंश हो। ऐ सुरत तू उस मालिक की अंश है। इस शब्दब्रह्म या पारब्रह्म की अंश है। तू यहाँ आकर माया में फँस गई।

अब यह जो मुझको तुम लोगों से ज्ञान हुआ कि मैं तो किसी के अन्तर नहीं जाता तो जो कुछ मेरे अन्तर रूप प्रगट होते हैं या संस्कार हैं, यह हैं नहीं मगर भासते हैं। फिर मैं पारब्रह्म या शब्दब्रह्म में जाता हूँ। शब्द को सुनता हूं। मेरे मन में विचार आता है कि प्रकाश को देखने वाली और वस्तु है। शब्द को सुनने वाली और वस्तु है। मैं तुम्हारी आवाज सुनता हूँ तुम और वस्तु हो मैं और वस्तु हूँ। फिर मैं सोचता हूं कि मैं कौन हूँ। मैं वह वस्तु हूँ जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती है, शब्दमें रहती हुई शब्द को सुनती है। यह ज्ञान हुआ। तुम तो साधन करोगे तब पहुँचोगे मगर बुद्धि के साथ तो मेरी बात से

सहमत हो। वह जो मैं है वह है मेरा स्वरूप जिसको कहते हैं अकह, अपार, अगाध अनामी। जिसका न कोई रूप है न रंग है, न वह अलख है, न अकह है। है कोई अवश्य।

अब सोचता हूँ कि यदि तू वहाँ जाकर कुछ बन गया, शब्द सुन लिये तो किसी का क्या कर सकता है। यदि मैं वह हो गया तो मुझमें शक्ति होनी चाहिए। मुझमें न सही! पलटू साहब जो यह कहता है—

साधो हम वहां के वासी।
जहाँ पहुंचे नहिं अविनासी॥

और यह भी कहता है कि ईश्वर की आज्ञा को सन्त टाल सकता है। उसने यह शब्द अहंकार के साथ लिखे थे और इसकी उसे सजा मिली। दूसरे साधुओं ने उसे जीवित उठाकर तेल के खौलते हुये कढ़ाह में डाल दिया। यदि वह सन्त बनकर ईश्वर की आज्ञा को टाल सकता था तो इन साधुओं को रोक सकता था।

मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि शब्द और प्रकाश के होने से एक चेतन शक्ति उत्पन्न होती है और मैं चेतन का बुलबुला हूँ। एक सुरत हूँ। न खुदा न ब्रह्म, न ईश्वर न अकाल पुरुष, न अनामी। मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ। मालिक की मौज के सिलसिले में शब्द और प्रकाश को प्रगट होने से मेरी मैं बन गई। जब तक उसकी मौज है जैसा उसने खेल खिलाना है वह मुझे यहाँ रक्खे। जब समाप्त हो जायगा मेरी मैं भी समाप्त हो जायगी। अब आवागवन का भ्रम नहीं रहा।

[शेष आगामी अंक में]

व्यहूला

[गतांक से आगे]

और उसने सोते हुये निखन्दर को काट लिया। व्यूहला जाग रही थी। उसने सांप को देखकर शोर मचाया। द्वार खाला गया। सबने आकर देखा। सांप ने निखन्दर की जान लेली थी। वह अँगड़ाई ले रहा था। मुख से झाग निकल रहे थे।

यह दशा थोड़ी देर तक रही। फिर उसने आँखें बंद कर लीं और लकड़ी के समान अडोल बन गया। माता पिता ने बहुत कुछ दवा इलाज कराये पर किसी से कुछ लाभ न हुआ। सोने वाले ने फिर आंख न खोलीं। निखन्दर अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था। घर में ऐसा शोक छा गया कि जिसका कहना कठिन है। रोने वाले रो-पीट कर चुप हो रहे। मौत पर किसका वश है? पर व्यहूला का रोनाँ बन्द न हुआ। सबने समझाया सब्र संतोष करने को कहा। सनकासुन्दरो ने इसको गोद से चिपटा कर ढाढस दिया हाथ से आँसू पोंछे पर इसके चित्त को धैर्य न बँधा वह अपनी सास से कहने लगी।

बालकपन में एक दिन मेरी माता ने कहा था कि किसी का परिश्रम असफल नहीं होता 'मनुष्य प्रयत्न ईश्वर सहायता'। सावित्री ने अपने पति को जीवित कराया था। मेरा पति मरा नहीं है केवल सांप सूंघ गया है। लोग कहते हैं सांप के काटे हुए की उम्मीद छः मास तक रहती है। में स्वासो के शव को लेकर जाऊंगी। कोई जानने वाला मिल ही जायगा। यदि वह जी उठे तो ही मैं लौटकर आऊंगी नहीं तो इस शरीर का भी अन्त इनके साथ ही होगा।

दृढ़ विश्वास का कौन सामना कर सकता है? जो

इनका स'थ न दूंगी तो सम्बन्ध कैसा ? सायन बोला।

ब्यहूला आखिर यह तेरा घर है यहाँ आकर कुछ दम ले ले फिर जो तेरे जी में आवे वह करना। बेटी ने उत्तर में कहा यह सब सत्य है मगर मुझको अपने घर में न बुलाओ। यह पापी जीवन है अब ब्यहूला किसको क्या मुँह दिखाये। घर-द्वार जिसका था वह तो चल बसा। मैं इस लाश को छोड़ नहीं सकती। नवका से बाहर निकलना अधर्म है। माता ने मुझे सावित्री की कथा सुनाते समय कहा था कि नारी का धर्म यह ही है कि पति परायण हो। मैं तो दुःखी हूं अब तुमको क्या दुःखी करूं। मेरी चिंता न करो। समझलो कि मैं भी मर गई। यदि किसी हकीम ने इनको अच्छा कर दिया तो जीते आ मिलगे नहीं तो मेरा इनका संग होगा। जीवन का अन्त होगा।

अभी इनकी बातें पूरी नहीं हुई थी कि एक हवा का झोंका इसकी नवका को मंझधार में बहा ले गया। माता-पिता विलाप करते रह गये। प्यारी बेटी ! क्या हमारी गोद खाली कर जायगी। ब्यहूला ने सबका रुदन सुना पर उसकी नवका वेग के साथ पश्चिम की ओर बह निकली। लड़की ने पति के प्रति माता-पिता के मोह का कुछ ध्यान न किया। उनके नाते-रिश्ते के बन्धन को सहज ही में तोड़ दिया। माता-पिता विवश और निराश होकर घर गये। और घन्टों सिर नीचा करके रोते रहे।

वायु तेज थी। छोटा (बादवान) एक तरह का पर्दा जिसके सहारे वायु की सहायता से नवका चलती है। नवका को तेजी से बहा ले गया। गंगा की लहरें आकाश से बातें कर रही थी। ब्यहूला में कहाँ बल था जो नवका

को सम्भालती। इतने में आकाश में कुछ बादल के फोड़ये प्रगट हुये। चारों ओर घटाटोप अन्धेरा छा गया कुछ वर्षा के छ टे पड़ने लगे। जब बिजली कौंधती मेघ मण्डल कड़क उठता। फिर वायु के जोर शोर से झोंके चलने लगे। सती ने सोचा ऐसा न हो नवका उलट जाय और पति से वियोग हो जाय। उसने पति के शव को अपने शरीर से कस लिया और रो रोकर विलाप करने लगी। पर्मदेव परमेश्वर! क्या दीन - दुखी ब्यहूला के दुख-दर्द का कोई अन्त नहीं है? गहरी नदी है। हर चारो ओर घटाटोप अन्धियारी छाई हुई है! वायु के झोंकों से नवका के उलट जाने का भय है। अंधेरा बराबर बढ़ता चला जा रहा है। हाय! वह लोग जो किनारे पर है मुझ विलखती अवला के दर्द को क्या समझ सकते हैं। केवल एक ही आसरा कि स्वामी का शरीर अब मुझसे अलग न हो सकेगा।

वह इसी चिंता में थी कि तूफान और तेजी से आ गया। सम्भव था कि नवका और उसके सवार डूब जाते। एक मल्लाह को बिजली के कौंधे में यह नवका दीख गई। उसकी एक बड़ी नाव जो किनारे मे बंधी थी उसको खोल कर बड़ी ही जल्दी ही उसने ब्यहूला की नवका को पकड़ लिया और अपनी नाव से कस कर बाँध लिया। इतने में फिर बिजली चमकी, मल्लाह ने ब्यहूला को देखा। पूछा तू कौन है? और यह लाश कैसी है? वह बोली यह मेरे स्वामी की लाश है। सती की सुन्दरता अनुपम थी। देख कर उसके जी में पाप बस गया। वह कहने लगा सुन्दरि! मृतक शरीर को क्यों गले से बाँध रक्खा है? यह बड़ी बुरी बात है। अब इसको छोड़ उसकी आशा त्याग। मेरे घर ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है। मैं तेरी सब प्रकार

से रक्षा करूंगा।

ब्यहूला ने कई दिन से खाना पीना त्याग रक्खा था। चिंता और दुख में पलक से पलक नहीं झपका था। उसने मन में विचार किया। सास-ससुर का घर छूटा, माता-पिता के प्रेम से मुख मोड़ा, अब भाग्य ने एक दिन दिखाया कि मांझी मुझसे ऐसे दुरवचन बोल रहा है। हे विधाता! तुझ पर किसका वस है? अब तक भी लाश उससे कसी थी। जो में आता था कि वह चुप हो रह पर हालत और थी मांझी ने उसकी जान बचाई थी। उसने सिर उठाकर कहा। भाई मांझी! तू क्या कहता है? ऐसी बात मुँह से निकालनी उचित नहीं है। मैं सावित्री हूँ इस प्रकार की बात-चीत मुझको पसन्द नहीं है। मल्लाह ने सोचा यह सीधी तरह से न मानेगी। इसको नवका से अलग करना चाहिए। इस भाव से वह इसकी ओर झुका ब्यहूला डरी ऐसा न हो पति से अलग हो जाऊं। उस समय किसी का सहारा नही रहा था। उसने आकाश की ओर दृष्टि करके कहा। प्रभो! जहां किसी का सहारा नहीं होता वहां तुम ही एक सहारे बनते हो। अब देरी न करो। इसके नेत्रों से अश्रु धारा बह रही थी।

आस अब किसकी करूं, जब आशा तेरी रह गई।
मात-पिता पति सबही छूटे, अबला तेरी रह गई॥

माँझी डोंगी की रस्सी को पकड़कर अपनी नाव की ओर खींचने लगा और जब करीब आ गई उसने चाहा कि डोंगी पर पांव रक्खे इतने में फिर बिजली चमकी और हवा का ऐसा जोर का तूफान आया कि माँझी अपने पाँव को न सम्भाल सका और नदी में गिर पड़ा। उधर नवका